विक्रम संवत-२०३५, श्रावण शुक्ल - १३, रविवार, तारीख २४-८-१९८०
वचनामृत- २९५, २९८ प्रवचन-१७

वचनामृत। २९५। कल थोड़ा चला है, फिर से लेते हैं। **यद्यपि...** यद्यपि **दृष्टि-अपेक्षा से...** सम्यग्दर्शन का विषय तो ध्रुव चीज़ है। इस सम्यग्दर्शन की अपेक्षा से साधक को-धर्म का साधन करनेवाले को **किसी पर्याय का या गुणभेद का स्वीकार नहीं है,...** आहाहा! दृष्टि सम्यक्-सत्य दर्शन पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसका सत्य दर्शन अन्दर हुआ, इस सत्यदर्शन में पर्याय का और गुणभेद का स्वीकार नहीं। वह तो ध्रुव को स्वीकारती है, दृष्टि तो ध्रुव को ही स्वीकारती है। आहाहा! क्योंकि जिसमें अनन्त-अनन्त गुणों की खान-खजाना (है), उस ओर की दृष्टि पर्याय और गुणभेद को भी सम्यक् दृष्टि स्वीकारती नहीं। आहाहा!

तथापि'.. तो भी **उसे स्वरूप में स्थिर हो जाने की भावना तो वर्तती है।** समकिती को तो अन्दर में ही जाना, अन्तर आनन्द में ही जाने की भावना वर्तती है। फिर भी **रागांशरूप बहिर्मुखता...** समकिती को भी राग आता है। पूर्ण वीतराग न हो, तब दृष्टि में चाहे तो पर्याय और गुणभेद न हो और दृष्टि में विषय अकेला ध्रुव ही हो, फिर भी उसे रागांश आता है। **रागांशरूप बहिर्मुखता उसे दुःखरूप से वेदन में आती है...** आहाहा! सम्यग्दर्शन के विषय में भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का जहाँ भान हुआ, मैं तो अतीन्द्रिय आनन्दकन्द हूँ, उसको जब तक वीतराग न हो, तब तक रागांश आता है। वह रागांश बहिर्मुख उसे दुःखरूप से वेदन में आता है। राग का अंश महाव्रतादि, व्रतादि का विकल्प उठता है, परन्तु वेदन दुःखरूप लगता है। आहाहा! क्योंकि भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, ऐसा जहाँ दृष्टि में आया और उसके ज्ञान में राग से प्रज्ञाछैनी से भिन्न हुआ, तब तो उसके विषय में पर्याय और गुणभेद तो नहीं, फिर भी रागांश आता है, वह दुःख का वेदन करते हैं।

समकिती श्रेणिक राजा नरक में हैं। सम्यग्दर्शन (है)। अनन्तानुबन्धी का अभाव

हुआ इतना सुख तो हमेशा है। इसके अलावा तीन कषाय है, उसका दु:ख तो है। जितना कषाय का अंश है, वह दु:ख का ही स्वरूप है। दु:ख का वेदन बहिर्मुख राग से वेदन में तो आता है। आहाहा! **और वीतरागता-अंशरूप अन्तर्मुखता सुखरूप से वेदन में आती है।** उसी क्षण जो सम्यग्दर्शन में द्रव्य स्वभाव का अनुभव हुआ, उतनी वीतरागता का अंश सुखरूप वेदन में आता है। एक क्षण में सुखरूप वेदन स्वसन्मुखता का और उसी समय बहिर्मुख जितना राग आता है, उतना दु:ख का वेदन एक समय में साथ में है। संयोग की बात यहाँ नहीं है। प्रतिकूल संयोग है तो दु:ख है अथवा अनुकूल संयोग है तो सुख है, यह शब्द है ही नहीं। संयोग तो ज्ञेयरूप चीज़ है। अन्तर में प्रतिकूलता मानकर अज्ञानी द्वेष करता है, ज्ञानी प्रतिकूलता देखकर द्वेष नहीं करते। अपनी कमजोरी से द्वेष आ जाता है। आहाहा! उसका दु:ख का वेदन करते हैं। साथ में वीतराग अंश का भी वेदन है, सुख का भी वेदन है। अतीन्द्रिय चमत्कारिक आनन्द का भी अनुभव-वेदन है और साथ में जितना राग है, उतना दु:ख का वेदन है। आहाहा! **वीतरागता-अंशरूप अन्तर्मुखता सुखरूप से वेदन में आती है।**

जो आंशिक बहिर्मुख वृत्ति वर्तती हो,... आंशिक बहिर्मुख वृत्ति वर्तती हो, **उससे साधक न्यारा का न्यारा रहता है।** दृष्टि में भेदज्ञान की अपेक्षा से राग से अन्तर में तो न्यारा रहते हैं। फिर भी राग है, उसका वेदन भी है। वेदन से न्यारे रहते हैं कि यह मेरी चीज़ नहीं। मैं तो ज्ञान और आनन्दस्वरूप हूँ। फिर भी राग का अंश आता है, उसको वेदते हैं। वीतरागता-अंशरूप... आ गया। **आंशिक बहिर्मुख वृत्ति वर्तती हो,...** आहाहा! कोई भी बहिर्मुख में पंच परमेष्ठी को वन्दन, भक्ति, श्रवण आदि। श्रवण, मनन, चिन्तन, मंथन सब एक राग है। इतना तो दु:खवेदन आता है। **उससे साधक न्यारा का न्यारा रहता है।** अन्तर में उससे भिन्न चीज़ हो गयी है तो भिन्न में एकता कभी होती नहीं। पानी के दल में तेल का बिन्दु ऊपर डालो तो ऊपर चिकनापन दिखता है। परन्तु पानी में चिकनेपन का प्रवेश नहीं है। पाँच-दस सेर पानी हो, ऊपर तेल डालो तो अन्दर प्रवेश नहीं करेगा। क्योंकि दोनों का स्वभाव भिन्न है।

ऐसे भगवान आत्मा आनन्द (पानी) समान, अन्दर राग तेल समान और अन्दर पानी आनन्द समान। दो की भिन्नता रहती है। राग ऊपर ही ऊपर तैरता है। पानी के ऊपर

तेल का बिन्दु ऊपर का ऊपर रहता है। वैसे भगवान आत्मा के आनन्द के ऊपर राग रहता है, अन्दर प्रवेश नहीं करता। फिर भी वेदन भी है। आहाहा! क्योंकि वह कोई परचीज़ नहीं है। परचीज़ को तो छूता नहीं, परन्तु अपने में अपनी कमजोरी से रागादि, द्वेषादि आया उसका वेदन भी है। दुःख भी है। आहाहा! संयोग को दुःख कहा नहीं, संयोग को सुख कहा नहीं। संयोगी चीज़ तो बिल्कुल पर है, उसको तो आत्मा छूता भी नहीं। कभी आत्मा अपने सिवा, परपदार्थ कर्म से लेकर शरीर, वाणी, मन, स्त्री, कुटुम्ब-परिवार किसी को आत्मा अनन्त काल में कभी स्पर्शा ही नहीं। परन्तु अपनी पर्याय में कमजोरी से जो राग आता है, उसका वेदन करते हैं। वीतरागता है, उतना आनन्द है; राग है, उतना दुःख है। वह तो अपनी-अपनी पर्याय में है। पर के साथ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा!

आँख में किरकिरी नहीं समाती;... आँख में रजकण नहीं समाता। यहाँ किरकिरी शब्द आपका हिन्दी में है। हमारे यहाँ कहते हैं, आँख में कणिका-कणिका, रजकण या तिनका, तिनका अन्दर नहीं समाता। अन्दर आवे तो भी बाहर निकाल देता है। अन्दर नहीं जा सकता। आहाहा! **आँख में किरकिरी नहीं समाती; उसी प्रकार चैतन्यपरिणति में...** आहाहा! भगवान आत्मा की निर्मल परिणति में **विभाव नहीं समाता।** विभाव उसमें अन्दर एकरूप नहीं होता। ऊपर-ऊपर तिरता है। आहाहा! ऐसा मार्ग प्रभु का।

तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ भगवान की यह वाणी है। बहिन को अन्दर से आयी है, वह बोले हैं, और लिख लिया है। वे तो आनन्द में रहते हैं, अतीन्द्रिय आनन्द में रहते हैं। परन्तु ऐसा थोड़ा बोले होंगे तो लिख लिया है। आहा..!

कहते हैं, जैसे **आँख में किरकिरी नहीं समाती; उसी प्रकार चैतन्यपरिणति में...** भगवान चैतन्य की पर्याय में; चैतन्यवस्तु जो पदार्थ अनादि सत् सत्ता, सत् सत्ता, सत् परमेश्वर परम स्वरूप, उसमें **चैतन्यपरिणति में विभाव नहीं समाता।** चेतन में तो नहीं (समाता), परन्तु चैतन्य की परिणति में विभाव नहीं समाता। आहाहा! क्या कहा? चेतन जो द्रव्य है, उसकी तो बात ही क्या करनी? उसमें तो केवलज्ञान भी नहीं जाता। ये तो अपनी जो चैतन्य की निर्मल परिणति प्रगट हुई, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की निर्मल दशा, उसमें भी विभाव नहीं समाता। आहाहा! तेल का बिन्दु जैसे पानी में ऊपर रहता है, वैसे

चैतन्यपरिणति से राग ऊपर रहता है। राग और परिणति दो एक नहीं होते, कभी तीन काल में साधक को। यह साधक। आहाहा!

वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ का यह कथन है। दिव्यध्वनि का सार यह है। आहा..! तेरी चीज़ में तो राग और विभाव नहीं समाता, परन्तु तेरी चैतन्य की परिणति तुझे हुई-धर्म दशा, उसमें भी राग समाता नहीं। क्योंकि वह वीतरागभाव है। धर्म है वह वीतरागभाव है। वस्तु वीतरागमूर्ति है, चैतन्य वीतरागमूर्ति है। उसके अवलम्बन से वीतरागपरिणति हुई, वह धर्म है। उसमें रागादि का प्रवेश नहीं होता। आहाहा! ऐसी बात है। अरे..! चौरासी के अवतार करके अनन्त अवतार हो गये, प्रभु! मान बैठा, कुछ नहीं था और मान बैठा कि मैं कुछ धर्म करता हूँ। अन्दर तो सब शल्य पड़े हैं। आहाहा! ऐसे अनन्तानन्त भव किये, परन्तु चैतन्य की परिणति निर्मलानन्द है, वह प्रगट नहीं की। और वह प्रगट करे तो साथ में राग आता है, उसका भी परिणति में प्रवेश नहीं होता। आहाहा! तो पूरी दुनिया तो दूर रह गयी। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, धन्धा-व्यापार उसको तो आत्मा की राग की परिणति भी छूती नहीं। क्या कहते हैं? आत्मा के सिवा सब चीज़, उसको राग की मन्दता आती है, वह परिणति को छूती नहीं, तथा वह राग परद्रव्य को छूता नहीं। आहाहा! ऐसा प्रभु का मार्ग है।

राग की दशा धर्मी जीव को धर्म परिणति प्रगट हुई, वह तो वीतरागदशा है। वीतरागदशा में राग आता नहीं। परन्तु राग आये बिना रहता नहीं। परन्तु रागपरिणति से भिन्न रहता है। अरे..! प्रभु! वह राग परिणति से तो भिन्न (रहता है), परन्तु राग पूरी दुनिया के संयोग से भी भिन्न (रहता है)। दुनिया की कोई चीज़ को राग छूता है.. आहाहा! गजब, प्रभु! ऐसी बात अन्तर में बैठनी और उसका परिणमन होना, वह बात अलौकिक बात है। आहा..!

भगवान त्रिलोकनाथ की दिव्यध्वनि में आया, गणधरों ने सुना, इन्द्रों ने सुना, उसमें से यह सब बात आयी है। आहाहा! **आँख में किरकिरी नहीं समाती; उसी प्रकार चैतन्यपरिणति में विभाव नहीं समाता। यदि साधक को बाह्य में—प्रशस्त-अप्रशस्तराग में...** आहाहा! साधक को शुभ-अशुभराग में **दुःख न लगे और अन्तर में—वीतरागता में—सुख न लगे तो वह अन्तर में क्यों जाए?** आहाहा! क्या कहते हैं? बहिर्मुख दृष्टि

कुछ भी चलो, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि कोई भी परिणाम, वाँचन, श्रवण, मनन। वाँचन, श्रवण, मनन, चिन्तवन, मंथन के विकल्प में यदि दुःख न लगे.. आहाहा! और अन्तर में सुख न लगे तो अन्तर में क्यों जाए? क्या आया, समझ में आया? भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु में सुख न लगे, वेदन में, हों! पर्याय में। वेदन में पर्याय में सुख न लगे और राग में दुःख न लगे तो वह आत्मा अन्तर में क्यों प्रवेश करे? राग से भी हटकर अपनी परिणति अन्तर में ले जाते हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग (है)।

प्रभु का मार्ग है शूर का, कायर का नहि काम। वीर का मार्ग है शूर का। अन्दर में वीर्य की रचना में तो आत्मा की रचना हो, उसका नाम वीर्य कहते हैं। भगवान ने समयसार में ४७ शक्ति का वर्णन किया। उसमें एक वीर्य-बल शक्ति ली। वीर्य शक्ति क्या करती है? कि धर्म दृष्टि सम्यग्दर्शन हुआ तो सब गुण की रचना, अनन्त गुण की व्यक्तता की रचना करे, उसका नाम वीर्य और वीरता कहने में आती है। आहाहा! वह वीर्य स्वरूप की रचना करे। रचना अर्थात् गुण की, द्रव्य की नहीं। गुण-द्रव्य तो ध्रुव है। आहाहा! परन्तु ध्रुव पर नजर जाने पर ध्रुव का स्वीकार होने से ध्रुव में जो वीर्य है, वह अपनी निर्मल परिणति की रचना करे। राग की रचना वीर्य नहीं करता। आहाहा! समझ में आता है? स्वरूप की रचना... ४७ शक्ति में आता है। शब्द यही है।

वीर्यगुण अर्थात् स्वरूप की रचना करे वह। है उसमें, है। छठा बोल है। **स्वरूप की (-आत्मस्वरूप की) रचना की सामर्थ्यरूप वीर्यशक्ति।** ४७ शक्ति। ऐसी अनन्त शक्ति है। यहाँ तो ४७ शक्ति में एक वीर्यशक्ति ली है। वीर्य जो पुत्र-पुत्री हो, वह रेत-वीर्य नहीं। वह तो धूल है। आहाहा! अपना वीर्य इसको प्रभु कहते हैं कि आत्मस्वरूप की, वह शब्द कोष्टक में है, मूल शब्द स्वरूप है। **स्वरूप की रचना की सामर्थ्यरूप वीर्यशक्ति।** आहाहा! देखो! संस्कृत पाठ है। **स्वरूपनिर्वर्तनसामर्थ्यरूपा वीर्यशक्ति।** संस्कृत में है। **स्वरूपनिर्वर्तनसामर्थ्यरूपा।** आहाहा! स्वरूप को उत्पन्न करनेवाली ऐसी वीर्यशक्ति। आहाहा! **सामर्थ्यरूपा** अपने सामर्थ्य से वीर्य अपने स्वरूप की पर्याय में रचना करता है, निर्मल वीतरागता प्रगट करता है, निर्मल आनन्द और शान्ति प्रगट करता है, उसका नाम वीर्य है। जो वीर्य शुभ-अशुभ करे, उस वीर्य को नपुंसक कहा है। पुण्य-पाप अधिकार और अजीव अधिकार, दो जगह (आया है)। शुभभाव करनेवाले को नपुंसक-क्लीव

कहा है, संस्कृत शब्द में क्लीव है। क्लीव का अर्थ नपुंसक है। आहाहा! गजब बात है! गजब बात!! प्रभु! लोगों ने बाहर में मान लिया। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, वीर्यशक्ति उसको कहना चाहिए कि स्वरूप की रचना करे। उसमें- राग में यदि दुःख न लगे और आनन्द में सुख न लगे तो प्रभु अन्दर में कैसे जाए? वह तो बाहर भटकता है। राग-बाहर में ठीक लगता है, शुभ और अशुभराग में रहता है, भटकता है, बनाता है, रचता है और उसमें खुश होता है। शुभ-अशुभ वीर्य, वह वीर्य नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, सुख न लगे-आत्मा के आनन्द में सुख न लगे और राग में दुःख न लगे तो **वह अन्तर में क्यों जाए?** वह अन्तर में कैसा जा सकेगा? आहाहा! **कहीं राग के विषय में 'राग आग दहै' ऐसा कहा हो,...** छहढाला में। छहढाला में 'राग आग दाह दहै सदा' राग आग दाह दहै सदा। छहढाला में है। आहाहा! राग दाह दहै सदा। चाहे तो शुभराग दया, दान, भक्ति, व्रत, ब्रह्मचर्य के विकल्प में शुभराग हो, आहाहा! राग दाह दहै सदा। रागरूपी दाह-अग्नि आत्मा को जलाती है। आहाहा! शुभराग; भगवान की शान्ति, आनन्द का भान हुआ फिर भी कमजोरी में जो राग आता है, वह राग दाह-अग्नि समान है। आहाहा! राग आग दहै सदा, ऐसा कहा है। कहीं प्रशस्त राग को आग कहा, छहढाला में। राग को आग कहा है, छहढाला में। और विषकुम्भ कहा है, समयसार में। समयसार के मोक्ष अधिकार में शुभभाव को जहर का घड़ा (कहा है)। आहाहा! विषकुम्भ मूल पाठ है। पुण्य और पाप का भाव दोनों जहर का घड़ा है। आहाहा! गजब बात है! आदमी को कहाँ जाना? पूरे दिन धन्धा करना... मार्ग बापू! बहुत अलग प्रकार का है, प्रभु!

यहाँ बहिन कहते हैं, **कहीं राग के विषय में 'राग आग दहै' ऐसा कहा हो, कहीं प्रशस्तराग को...** प्रशस्त, हों! शुभराग को **'विषकुम्भ' कहा हो,...** मोक्ष अधिकार में। आहाहा! **चाहे जिस भाषा में कहा हो, सर्वत्र भाव एक ही है...** सर्वत्र भाव (यही है कि) राग दुःख ही है। किसी भी प्रकार का राग-शुभराग। आहाहा! राग के पीछे अन्दर वीतरागमूर्ति भगवान विराजता है। उसकी दृष्टि और अनुभव हुआ, बाद में चाहे जितना राग हो, परन्तु सब दुःखरूप लगता है। आहाहा! **चाहे जिस भाषा में कहा हो, सर्वत्र भाव एक ही है...** क्या? **कि—विभाव का अंश, वह दुःखरूप है।** आहाहा! विभाव का अंश दुःखरूप ही है। मोक्ष अधिकार में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने विष का घड़ा-विषकुम्भ

कहा है। क्योंकि एक ओर प्रभु है वह अमृत का सागर है। अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, उसके समक्ष राग का कण जहर समान, जहर के प्याले समान है। आहाहा! उस राग से आत्मा को लाभ होगा, राग की क्रिया करो, करते–करते लाभ होगा, वह मिथ्यात्व है, प्रभु! मानो, मनानेवाले मिलेंगे। वस्तु यह है। आहा..!

त्रिलोकनाथ के फरमान में, सीमन्धर प्रभु के पास से यह बात आयी है। बहिन के हृदय में जातिस्मरण में ऐसा आया है। आहाहा! असंख्य अरब वर्षों का जातिस्मरण बहिन को प्रत्यक्ष है। नौ भव। वहाँ का तो बहुत याद है। कभी–कभी तो ध्यान में भूल जाते हैं, मैं महाविदेह में हूँ कि भरत मैं हूँ, भूल जाते हैं। बाहर में बहुत ख्याल करे तो (मालूम पड़े कि) ओहो..! भरतक्षेत्र में हूँ। भगवान के पास यह सब बात सुनी है। आहाहा! वह बात यह है।

विभाव का अंश, वह दुःखरूप है। भले ही उच्च में उच्च शुभभावरूप... उच्च शुभभाव हो, ऊँचा शुभभाव हो, तीर्थंकरगोत्र बाँधने का, आहारकशरीर बाँधने का, यशकीर्ति बाँधने का, पुण्य बाँधने का किसी भी प्रकार का राग हो। **या अतिसूक्ष्म रागरूप...** अतिसूक्ष्म राग, सूक्ष्म। अन्तर में सूक्ष्म राग से भिन्न करके सूक्ष्म राग होता है, तब उससे भेदज्ञान में भिन्नता करते हैं। ऐसा सूक्ष्म राग हो, **तथापि जितनी प्रवृत्ति, उतनी आकुलता है...** आहाहा! भगवान तो अन्दर निवृत्तस्वरूप प्रभु है। हिले नहीं, चले नहीं, विकल्प आवे नहीं। आहाहा! ऐसी बात है।

यह पुस्तक पढ़कर तो अन्यमति प्रसन्न हो जाते हैं। कुदरती ऐसी बात बाहर आ गयी है। एकदम बाहर आ गयी। बहिनों ने लिख लिया, वह भी किसी को मालूम नहीं था। कब बोले और कब लिख लिया, मालूम नहीं। मैंने तो कहा था, जिन्होंने लिख लिया था, रामजीभाई को कहा, जिन्होंने लिखा, उन्हें कुछ दो। तो प्रत्येक को सौ रुपये का चाँदी का बहिन के फोटो सहित (दिया)। रुपये की क्या कीमत है। आहा..! यहाँ तो बोले तो रुपये का ढ़ेर हो जाएगा। बहिन वधायेंगे, ८०००० रुपये तो कम से कम आयेंगे। इस बुधवार को बहिन का जन्मदिन है। कम से कम ८००००। उससे भी बढ़ेंगे। उसमें क्या? उसकी क्या कीमत है। आहाहा!

चीज़ तो यह है। **जितनी प्रवृत्ति, उतनी आकुलता है...** आहाहा! प्रभु निवृत्तस्वरूप

अतीन्द्रिय आनन्द का धाम, उस क्षेत्र से-उस धाम से हटकर कुछ भी रागांश आवे, सब आकुलता है। आहाहा! **और जितना निवृत्त होकर...** राग से निवृत्त होकर आनन्द प्रभु में विराजता है, जितना स्थिर होता है, पर्याय से, हों! ध्रुव में तो कोई हलन-चलन है नहीं। पर्याय अन्दर में स्थिर होती है, उतने अंश में अतीन्द्रिय आनन्द के धाम में वर्तमान पर्याय का अंश जितना उसमें निवृत्त होकर वर्तता है, **स्वरूप में लीन हुआ, उतनी शान्ति...** आहाहा! **एवं स्वरूपानन्द है।** आहाहा! मुद्दे के माल की रकम है, बापू! **उतनी शान्ति एवं स्वरूपानन्द है।**

ज्ञानी जीव निःशंक तो इतना होता है कि सारा ब्रह्माण्ड उलट जाए, तब भी स्वयं नहीं पलटता; विभाव के चाहे जितने उदय आयें, तथापि चलित नहीं होता। बाहर के प्रतिकूल संयोग से ज्ञायकपरिणति नहीं बदलती; श्रद्धा में फेर नहीं पड़ता। पश्चात् क्रमशः चारित्र बढ़ता जाता है॥२९८॥

२९८। पास में ही है, सामने। २९८। **ज्ञानी जीव...** आहाहा! अनुभवी... कहा था न? ८० साल पहले। अब तो ९१ वर्ष हुए। १०-११ वर्ष की उम्र में हमारे पड़ोसी, हमारी माँ के मायके के ब्राह्मण थे। उसे हम मामा कहते थे। मूलजी मामा। पड़ोस में रहते थे, अकेले रहते थे। स्त्री-पुत्र नहीं थे। भुंगली, भावनगर के पास भुंगली है। हमारी माँ का ननिहाल भुंगली था। वह नहाकर-स्नान करके बोलते थे,

अनुभवीने एटलुं रे आनंदमां रहेवुं रे,
भजवा परिब्रह्म ने बीजुं कांई न कहेवुं रे...

मामा यह क्या बोलते हैं? हम तो बालक थे, ११ वर्ष की उम्र। आहाहा! उनको भी कुछ मालूम नहीं था। 'अनुभवीने एटलुं रे आनंदमां रहेवुं रे,...' आहाहा! उतारा है, दरबारी उतारा है उसमें कारकून थे। बड़ा कारकून था। हमारे मकान के साथ ही उनका मकान था। अकेले रहते थे। नहाकर रोज बोलते थे। मालूम कुछ नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, अनुभवी को, आत्मा का अनुसरण करके अनुभव करनेवाला समकिती, उसको आनन्द में रहना। अतीन्द्रिय आनन्द पर्याय में प्रगट होता है। भजवा

परिब्रह्म। परिब्रह्म अर्थात् आत्मा। उन लोगों में ईश्वर कहते हैं। परिब्रह्म, उनको भजना। अन्यमति में। यहाँ तो परिब्रह्म अर्थात् आत्मा। परि-समस्त प्रकार से ब्रह्म-आनन्द की मूर्ति प्रभु। 'भजवा परिब्रह्मने बीजुं कांई न कहेवुं रे...' परिब्रह्म प्रभु ऐसा भगवान, आनन्द में रहने से दूसरी कोई चीज़ उसको लागू पड़ती नहीं। बाहर की कोई चीज़ को वह छूता नहीं। आहाहा! ऐसा आत्मा।

ज्ञानी जीव निःशंक तो इतना होता है... २९८ है न? इतना निःशंक, निर्भय, निडर होता है। धर्मीजीव पूरी दुनिया से बेदरकार रहते हैं। कौन क्या मानता है, कौन क्या मानता है, उसकी उसे दरकार नहीं है। ज्ञानी जीव-धर्मी जीव **निःशंक तो इतना होता है कि सारा ब्रह्माण्ड उलट जाए,...** आहाहा! सारा ब्रह्माण्ड विपरीत हो जाए। उलट जाए अर्थात् विपरीत हो जाए। **तब भी स्वयं नहीं पलटता;...** जो अपनी चीज़ है, उसमें से क्यों पलटे? पाताल मिल गया, पाताल में-पर्याय के पाताल में भगवान था, वह मिल गया। चौदह ब्रह्माण्ड पलटे, परन्तु वह पलटता नहीं। **तब भी स्वयं नहीं पलटता; विभाव के चाहे जितने उदय आयें,...** आहा..! धर्मी को भी विभाव तो आता है। वासना विषय की, क्रोध की, मान की, माया, लोभादि रागादि। **विभाव के चाहे जितने उदय आयें, तथापि चलित नहीं होता।** स्वरूप में से चलित नहीं होता। उसका ज्ञाता-दृष्टा रहता है। आहाहा! राग और आत्मा का आनन्द दोनों चीज़, जैसे अग्नि और पानी दोनों चीज़ भिन्न, और भिन्न स्वभाव (है), दो चीज़ भिन्न और भिन्न स्वभाव (है), ऐसे भगवान और राग भिन्न और भिन्न स्वभाव (हैं)। आहाहा! ऐसी बातें हैं, प्रभु! सुने तो सही कि करना तो यह है। यह निर्णय तो करे। भले विकल्प से पहले निर्णय करे कि करना तो यह है। इसके बिना कभी जन्म-मरण का अन्त आयेगा नहीं और भवभ्रमण में कहाँ जाना? आहाहा! चौरासी के अवतार। आहाहा!

यहाँ एक खिसकोली थी। खिसकोली को क्या कहते हैं? गिलहरी। अन्दर में एक थी, गिर गयी। निकलने गयी, परन्तु वहाँ छेद था तो उसमें घुस गयी। छेद में घुस गयी और वहाँ मर गयी। आहाहा! उसे ऐसा था कि यह बचने का साधन है। बड़ा छेद था, उसमें चली गयी। आहाहा! ऐसे बेचारी गिर गयी, गिरकर (भागने का) प्रयत्न करती थी। उसे कोई निकालने गया, निकालने गया तो उसे एकदम भय लगा। अन्दर छेद था, उसमें घुस

गयी। मर गयी। वहाँ से निकली नहीं। आहाहा! ऐसे दु:ख तो प्रभु! यह तो साधारण है। आहाहा!

धंधुका में अभी थोड़े वर्षों पहले मुसलमानों ने एक गाय को सजाकर गाँव में घुमाया। फिर घर ले गये। घर जाकर उसके टुकड़े कर दिये। टुकड़े करके अपनी जाति में बाँटे। धंधुका में। २५-३० वर्ष हुए।

मुमुक्षु :- हिन्दी में फरमाईये।

पूज्य गुरुदेवश्री :- हिन्दी में नहीं आया? हमको खबर नहीं पड़ती, हिन्दी है या गुजराती? धंधुका है न धंधुका? उसमें एक बार मुसलमानों ने ऐसा किया था, २५-३० वर्ष या ५०-६० साल हो गये। बहुत वर्ष हो गये। यहाँ तो ९१ वर्ष हुए। कल के भाँति बात याद आये। मुसलमानों ने गाय को सजाकर गाँव में घुमाया। हिन्दु लोगों को थोड़ा दु:ख लगे तो ठीक। घुमाकर बाद में घर ले गये। टुकड़े-टुकड़े कर दिये। धंधुका। कौन पूछता है? सरकार में कोई शिकायत चलती है? जीवित गाय के टुकड़े। आहाहा! ऐसा तो अनन्त बार हुआ है, प्रभु! एक बार नहीं। यह तो सुना है, वह बात कही। आहाहा!

अरे..! हमारे नारणभाई कहते थे, पोस्टमास्टर थे न। हमारे पास दीक्षा ली थी। वे कहते थे, उनका एक पारसी मित्र था। उसके पास कोई कारण से गया था। वहाँ सूअर के पैर को सलिये से बाँधते थे। बाँधकर उसे जिन्दा अग्नि में डाला। जिन्दा सूअर। आहाहा! ऐसी वेदना कितनी बार हुई है, प्रभु! भूल गया। वर्तमान में थोड़ी अनुकूलता मिली तो घुस गया। आहाहा! ऐसे दु:ख तो अनन्त बार (सहे)।

यहाँ कहते हैं, ज्ञानी को **विभाव के चाहे जितने उदय आयें,...** ज्ञानी को रागादि का उदय तो आता है। आहाहा! द्वेष आये, राग आये, विषयवासना आ जाए। समकिती को पंचम गुणस्थान में होता है। आहाहा! क्योंकि चौथे, पाँचवे गुणस्थान में आत्मज्ञान में रौद्रध्यान भी कहा है। रौद्रध्यान। छठे गुणस्थान में नहीं होता। मुनि होते हैं, उनको आर्तध्यान होता है। रौद्रध्यान नहीं होता। ऐसे समकिती को भी रौद्रध्यान होता है तो यहाँ कहते हैं, **चाहे जितने उदय आयें, तथापि चलित नहीं होता।** आ जाओ। मेरी कमजोरी है। मेरी चीज़ नहीं। मेरी चीज़ में वह नहीं है। आहाहा! कठिन बात है। **चाहे जितने उदय आयें, तथापि चलित नहीं होता।**

बाहर के प्रतिकूल संयोग से ज्ञायकपरिणति नहीं बदलती;... आहाहा! शक्कर की डली हो। चाहे जिसमें डालो तो वह शक्कर स्वयं कहीं जहर नहीं होगी। शक्कर स्वयं मैल नहीं होगी। शक्कर तो शक्कर के पानीरूप प्रवाह होगी। वैसे भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की शक्कर की डली,... आहाहा! उसमें एकाग्र होकर, उसका प्रवाह चलता है। आहाहा! शक्कर का जितना प्रवाह है, वह मीठा प्रवाह है। आसपास में चाहे जितना मैल हो, मीठा प्रवाह कभी छूटता नहीं। आहाहा! ऐसे भगवान आत्मा अपना आनन्द की दृष्टि में उदय कोई भी आवे, तथापि चलित नहीं होता। आहाहा! भाषा आसान है, प्रभु! भाव बहुत अन्दर (गम्भीर) है। भाव का पलटा मारना... दूसरी सब क्रिया कर सकते हैं, नग्न हुआ, अनन्त बार मुनिपना लिया, अट्ठाईस मूलगुण पाले, पंच महाव्रत पाले, वह राग था, जहर था। आहाहा!

धर्मी जीव अपने आनन्द के स्वाद के समक्ष नित्यानन्द के अवलम्बन के समक्ष कोई भी प्रतिकूलता आवे, तथापि चलित नहीं होता। **बाहर के प्रतिकूल संयोग से ज्ञायकपरिणति नहीं बदलती;...** आहाहा! श्रेणिक राजा ने जेल में जहर पिया। नरक का आयुष्य बँध गया था। नहीं तो कहीं समकिती नरक में नहीं जाता। परन्तु पहले नरक का आयुष्य बँध गया था। बाद में क्षायिक समकित हुआ। आहाहा! उसमें उसका पुत्र आया। स्वयं ने जहर खा लिया। आहाहा! फिर भी क्षायिक समकित में बाधा नहीं आती। वह भाग और चैतन्य का भाग दोनों भिन्न रहते हैं। आहाहा!

संयोग से ज्ञायकपरिणति नहीं बदलती;... चाहे जैसे संयोग आये, परन्तु उसकी परिणति अर्थात् पर्याय चलती नहीं, बदलती नहीं, पर के साथ एकरूप परिणमती नहीं। चैतन्य की परिणति और राग, दोनों कभी एकरूप नहीं होते। **श्रद्धा में फेर नहीं पड़ता।** चाहे जितना राग आये, विभाव आये,... आहाहा! सिर फोड़ा, जहर पिया, फिर भी क्षायिक समकित (है)। भले गये नरक में। इस कारण से नहीं, पहले नरक का आयुष्य बँध गया था। आयुष्य बँध गया, उसमें फेरफार नहीं होता। फेर उतना पड़ता है, लड्डू बनाया हो, लड्डू, उसमें थोड़ा घी डाले। दो-चार दिन उस लड्डू को सूखने दे। वैसे पूर्व का आयुष्य बँधा हो, उसमें कुछ घट भी जाए, कुछ बढ़ भी जाए। आयुष्य में फेरफार नहीं होता। आहाहा! आयुष्य तो वहाँ भोगना ही पड़े। आहाहा! नरक का आयुष्य बँध गया था, तैंतीस

सागर का। स्थिति घट गयी, चौरासी हजार वर्ष की रही। चौरासी हजार वर्ष की रही। आहाहा!

एक क्षण का दुःख, भगवान, रत्नकरण्डश्रावकाचार में कहते हैं, उस दुःख को प्रभु, क्या कहें? करोड़ भव में और करोड़ जीभ से एक क्षण के दुःख का वर्णन नहीं हो सकता। आहाहा! जैसे उसकी-चैतन्य की महिमा का पार नहीं, वैसे उसे दुःख का पार नहीं। आहाहा! ऐसे दुःख में तैंतीस-तैंतीस सागर। एक बार नहीं, अनन्त बार गया। भूल गया। वहाँ कितना दुःख था। एक लाख मण का लोहे का गोला हो, टीप-टीपकर मजबूत किया हो। उस लाख मण के गोले को सातवीं नरक में ले जाएँ तो जैसे पार पिघल जाता है, वैसे वह लाख मण का गोला पिघल जाता है। उतनी तो वहाँ सर्दी है। ऐसी सर्दी में जीव तैंतीस सागर निकालता है। ऐसे अनन्त भव किये। आहा..!

यहाँ तो साधारण कुछ मिले तो अभिमान हो जाए। मैं इतना पढ़ा हूँ, मैं ऐसा अधिकारी हूँ, अमलदार हूँ, कार्यकर्ता हूँ। कर्ता है। आहा..! प्रभु! कर्ता तो ना कहते हैं, प्रभु! कोई किसी का कुछ कर सकता नहीं न! आहा..! व्यवस्थापक व्यवस्था करते हैं, सब झूठ है। व्यवस्थापक ऐसा कहे कि यह व्यवस्थापक आदमी है, उसे आगे कार्यभार सौंपो। व्यवस्था तो उस समय जो होनेवाली है, वह होगी, होगी और होगी ही। व्यवस्थापक से कुछ फेरफार होता नहीं। आहाहा! अरेरे! कैसे बैठे?

मुमुक्षु :- अभिमान तो होता है न।

पूज्य गुरुदेवश्री :- अभिमान होता है कि मैंने किया। मेरी उपस्थिति में यह सब सुधर गया। मेरी हाजरी में सब पलट गया। कौन पलटे? प्रभु! जगत की चीज़ तो उसके कारण उस समय क्रमबद्ध, क्रमबद्ध—जिस समय जो परिणाम जिस द्रव्य में जिस प्रकार से होनेवाला है, वह होगा, होगा और होगा। क्रमबद्ध। एक के बाद एक, एक के बाद एक होनेवाला है। आगे-पीछे कभी नहीं होता। कोई द्रव्य का परिणाम आगे-पीछे नहीं होता। यह परिणाम अभी पन्द्रहवें नम्बर में है, उसे पच्चीसवें नम्बर में ले जाओ (ऐसा नहीं हो सकता)। आहाहा! अनन्त आत्मा और अनन्त परमाणु, प्रत्येक की समय-समय में जो पर्याय क्रम में होनेवाली है, वह होती है। ज्ञानी उसको जानते हैं, उसके कर्ता होते नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। आया न? २९८।

ज्ञायकपरिणति नहीं बदलती; श्रद्धा में फेर नहीं पड़ता। पश्चात् क्रमशः चारित्र बढ़ता जाता है। चारित्र में दोष है। परन्तु वह फेरफार चला जाएगा। चारित्र का दोष धीरे-धीरे निकल जाएगा और पूर्ण चारित्र प्राप्त कर, केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में ही जाएगा। क्योंकि मूल पकड़ लिया है। मूल चैतन्यद्रव्य पकड़ लिया है। वृक्ष का मूल पकड़ लिया है तो उसका फल, फूल तो आयेगा ही। आहाहा! ऐसे भगवान आत्मा ध्रुव को जिसने पकड़ लिया, उसे केवलज्ञान आदि फल, फूल तो आयेंगे ही। बाहर की प्रतिकूलता से चलित नहीं होता। चारित्र में दोष लगता है। **पश्चात् क्रमशः चारित्र बढ़ता जाता है।** स्वरूप में रमणता बढ़ती जाती है। समकित तो है, उस ओर का पुरुषार्थ तो है ही। वह करते-करते चारित्र बढ़ जाएगा, केवलज्ञान हो जाएगा। परन्तु प्रतिकूलता में दुःख का वेदन है, परन्तु वह अपना है, ऐसा मानते नहीं। वह पर चीज़ है, मेरी कमजोरी से होती है, ऐसा करके उसको निकाल देता है और भिन्न रहता है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)